अभिराजराजेन्द्र मिश्र संस्कृतगीत–परम्परा के यशस्वी रचनाकार

डॉ. सोनिका राव*

'गीत' मानवीय भावों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। नृत्य उन भावों को मूर्त रूप प्रदान करता है तथा वाद्य उसमें सहायक होता है। नाट्यशास्त्रियों ने नाट्य के लिए भी 'गीत' की महत्ता स्वीकार की है और उसे नाट्य का प्राण माना है। आचार्य अभिनवगुप्त नाट्य प्रयोग के लिए 'गीत' को प्राणभूत स्वीकार करते हुए कहते है–प्राणभूतं तावद् ध्रुवागानं प्रयोगस्य।[1] आचार्य शार्ङ्गदेव भी 'गीत' की प्रधानता स्वीकार करते हुए नृत्य और वाद्य को 'गीत' का उपरंजक उत्कर्ष विधायक मानते हैं–नृत्तं वाद्यनुगं प्रोक्तंवाद्यं गीतानुवर्ति च।[2]

आचार्य भरत भी नाट्य के लिए 'गीत' की अपरिहार्यता स्वीकार करते हुए 'गीत' को नाट्य की शय्या प्रतिपादित करते हैं उनके अनुसार गीत और वाद्य ठीक ढंग से प्रयुक्त हो तो नाट्य प्रयोग में किसी प्रकार की विपत्ति नहीं आती है–

गीते प्रयत्नः प्रथमं तु कार्यः शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्।
गीते च वाद्ये च सुप्रयुक्ते नाट्यप्रयोगो न विपत्तिमेति ।।[3]

इस प्रकार प्राचीन आचार्यों द्वारा गीत कि महत्ता को प्रतिपादित किया गाया है।

अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में गीत प्रकरण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्राचीन आचार्यों के द्वारा यह कहा गया है कि 'गीतियों' की ही साम संज्ञा है, उसी से गीतितत्त्व का महत्त्व शिखरारूढ़ सिद्ध होता है–

यच्च गीतिषु सामाख्येत्यु–क्तमासीत्पुरातनैः। तेनैव गीतितत्त्वस्य महत्त्वं धुरि संस्थितम्।।[4]

मिश्र कहते हैं कि जो (अपनी) लयों तथा मुर्च्छनाओं से देवताओं तक को वशीभूत कर लेने में समर्थ है वह एकमात्र नृत्य एवं वाद्य से समन्वित 'गीत' तत्त्व ही है–

देवानपि समर्थं यत्प्रीणितुं लयमूर्च्छनैः। गीतमेव तदेकं यन्नृत्यवाद्यसमन्वितम्।।[5]

गीत महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि–धूप से जले–भुने बटोही को व्यंजनों से भी वैसी तृप्ति नहीं प्राप्त होती जैसे कि एक गिलास पानी से। ठीक उसी प्रकार सहृदय पाठक को भी (वृहत्कलेवर) महाकाव्य के अनुशीलन से वैसी आनन्दानुभूति नहीं हो पाती जैसे कि तत्क्षण ही गीत श्रवण से होती है–

***राव कृषि फार्म, ओजटू तहसील–चिड़ावा, जिला–झुंझुनूं (राज.)–333026**

न तथा व्यंजनैस्तृप्तिर्यथा हि चषकाम्भसा। ननु धर्माभितप्तस्य पथिकस्याभिजायते।।[6]

मिश्र ने 'गीत' को ही काव्य की आत्मा मानते हुए कहा है–

तथैव रसिकस्यापि महाकाव्यानुशीलनात्। जायते न तथाऽऽनन्दो यथा गीतेन तत्क्षणम्।।[7]

अलंकारादि सारे के सारे काव्यत्त्व गीत में उसी प्रकार उठते–गिरते हैं जैसे महासागर में चंचल लहरे बनती बिगड़ती रहती है–**अलंकारादयस्सर्वे कल्लोला इव चंचलाः। उद्भवन्ति विलीयन्ते सन्ततं गीतसागरे ।।[8]**

इसलिए संस्कृत वाङ्मय में आज की कविता में अमन्द आनन्दसन्दोह का स्त्रोत होने के कारण गीत तत्त्व की महिमा सिद्व होती है। अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने शास्त्रीय एवं लोकगीत दो प्रकार के भेदों का निरूपण किया है–**धातुमातुसमायुक्तं यद्धि नादाऽक्षरात्मकम्। कर्णामृतं विभक्तच्च द्विधा गीतं प्रशस्यते ।।[9]**

अर्थात् कर्ण कुहरों के लिए जो गीत अमृततुल्य होता है वह धातु (नादात्मक वाद्य) तथा मातु (अक्षरसंचयात्मक मुख ध्वनि) से समन्वित रूप गीत ही है। धातु तथा मातु को यन्त्रज तथा गात्रज भी कहा जाता है । धातु तथा मातु के दो भेद से भी गीत दो प्रकार का हो जाता है। इसके अतिरिक्त भी गीत के दो भेद किए जाते हैं, निबद्ध और अनिबद्ध। निबद्ध गीत–ताल, मान एवं रस पर आश्रित तथा अनिबद्ध छन्द, अक्षर, ताल आदि के नियमों से युक्त होता है। निबद्ध को शास्त्रीय संगीत तथा अनिबद्ध को सुगम संगीत (लोकगीत) नाम दिया गया है–

धातुज एवं मातुज गीत–

धातुजं वेणुवीणादियन्त्रसंचयनिस्सृतम्। मातुजं मुखजं प्रोक्तं गानरूपेण संस्थितम्।।[10]

जो वेणु तथा वीणा आदि यंत्र समूह से प्रस्फुटित होता है उसे धातुज गीत कहते हैं। मातुज गीत को मुखज अर्थात मुँह से निकलने वाला भी कहते हैं जो कि गायन के रूप में विद्यमान है। नाट्यशास्त्रकार भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में धातुज को चार प्रकार का बताया है। जैसे–

ततं चैवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च। चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।
ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयवनद्धं तु पौष्करम्। घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश एव च ।।[11]

(क) शास्त्रीय गीत–अभिराजराजेन्द्र मिश्र के अनुसार शास्त्रीय गीत का लक्षण इस प्रकार है–

गीतमेतद्यदा रागैर्गीयते शास्त्रसम्मतैः। काव्यं तादृशगीतानां रागकाव्यं समुच्यते।।[12]

अर्थात् जब यही गीत शास्त्र सम्मत रागों (भैरवी, केदार, धनाश्री आदि) के माध्यम से गाया जाता है तो उस प्रकार के गीतों का काव्य रागकाव्य कहा जाता है।

अभिनवगुप्तपाद ने नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनवभारती' में रागकाव्य के विषय में लिखा है–'राघवविजय' तथा 'मारीचवध' आदि रागकाव्य है। 'राघवविजय' में ढक्करग के माध्यम से ही विलक्षण वर्णनीयता का निर्वाह मिलता है। 'मारीचवध' में भी ककुभराग का निर्वाह मिलता है। इसलिए इनको 'रागकाव्य' कहते हैं। 'रागकाव्य' विविध संगीतषास्त्रीय रागों से गाये जाने वाले गीतों का संकलनभूत काव्य है।

रहसविहारी द्विवेदी ने रागकाव्य का लक्षण प्रस्तुत किया है–

रागलक्षणसंयुक्तं गेयं गीतं ध्रुवान्वितम्।
एकस्मिन् विषये रागे गीतानां तु समुच्चयः।।[13]

जो ध्रुवक से अन्वित, रागों के लक्षण से युक्त जो गीत गेय हो, ऐसे गीतों का जहाँ एक ही विषय अथवा राग में संकलन हो, उसे रागकाव्य कहते हैं। अतः रागकाव्य में प्रयुक्त राग–समूह संगीतशास्त्र सम्मत होते हैं।

आधुनिक काव्यशास्त्री**राधावल्लभ त्रिपाठी**ने 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' में रागकाव्य को इस प्रकार परिभाषित किया है–**विविधै रागैर्गेयं ध्रुवकान्वितगीतिसंयुतं रागकाव्यम।**[14] अर्थात् विविध शास्त्रीय रागों द्वारा गेय ध्रुवक से अन्वित गीतों के संकलन को रागकाव्य कहते हैं। आधुनिक युग में उपलब्ध रागकाव्य का प्रथम निदर्शन है–जयदेव कृत गीतगोविन्दम्, गीतगिरीशम्, गीतगौरीशम्, गीतपीतवसनम्, गीतगंगाधरम्, गीतराम–गोविन्दम् आदि ताल और लय पर आश्रित परम्परा में आते हैं।इन समस्त रागकाव्यों में ध्रुवक का प्रयोग अनिवार्य है जैसा कि रागार्णव मे कहा गया है– ज्ञान के अभाव में विवेक, रस के अभाव में ध्यान, श्रद्धा के अभाव में दान तथा ध्रुवक के अभाव में गान संभव नही होता है।

(ख) लोकगीत– अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने 'लोकगीत' का लक्षण देते हुए कहा है– जो संगीतशास्त्रीय नियमों से विनिर्मुक्त, किसी भी प्रकार के बन्धन से परे, तत्क्षण रस एवं आनन्द से सराबोर कर देने वाला लोकगीत कहा जाता है और जो स्वतंत्र रीति से सम्प्राप्त कण्ठध्वनि के अनुसार सुखपूर्वक तथा जनपद्, ग्राम, कुल जाति की परम्परा के अनुसार गाया जाता है–

तच्च सद्योरसानन्ददायकं गतबन्धनम् । शास्त्रनियमनिर्मुक्तं लोकगीतं समुच्यते।।[15]
यत्पुनर्गीयते स्वैरं यथाकण्ठं यथासुखम्। यथाजनपदग्रामकुलजातिपरस्परम्।।[16]

जनपद का उदाहरण जैसे–रसिक (रसिया) नामक लोकगीत व्रजक्षेत्र मे ही गाया जाता है। वाउल गीत (बंगाल), पण्डवानी गीत (छत्तीसगढ़), रागिणी गीत (हरियाणा), सूतगृह (सोहर), नक्तक (नकटा) प्रचरण (पचरा), वटुक (बरूआ), स्कन्धहारीय (कहँरवा), चैत्रक (चैता), फाल्गुनिक (फाग) आदि उत्तरप्रदेश में दण्डरासकगीत (जनभाषा में डाँडिया रास) गुजरात में तथा अभंग गीत (महाराष्ट्र) क्षेत्र में ही गाया जाता है।

कुल, जाति की परम्परा वाले लोक गीत भी एक दूसरे से भिन्न–भिन्न होते हैं। उत्तर भारत में आभीर (अहीर) नापित (नाई) कुम्भकार (कुम्हार) तथा रजकादि (धोबियों) के पृथक्–पृथक् जातीय गीत होते हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण – लोकगीत (प्रायः) नूतन ऋतुओं की आगवानी पर्व (तीज त्यौहार) घरेलू मंगल एवं उत्सव धर्म–संस्कृति एवं रीति–रिवाज के उपलक्ष्य में गाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के गीतों का उल्लेख मिश्र ने इस प्रकार किया है–

(1) ऋतु एवं कृषि पर आधारित गीत

(क) कजरी गीत–

कोसलेषु च काशीसु गीयते हि घनागमे। गीतिका कजरीनाम्नी
नैकरागसमाश्रिता।।[17]

पावस ऋतु आने पर सावन–भादों के महीनों में कोसल एवं काशी क्षेत्र में अनेक रागों पर आश्रित कजरी नामक लोकगीत गाया जाता है।मिश्र ने कजरी को अनेक रागों पर आश्रित बताया है तथा उदाहरणस्वरूप स्पष्ट भी किया गया है– प्रथम राग पर आधारित कजरी का उदाहरण 'वाग्वधूटी' मे मिलता है–

रौति कोकिला मदालसा रसालतरौ गोपिता तमालतरौ रे!
क्वचित्पल्लवे निलीय, मंजरीरसं निपीय
स्तौति सम्मुखं वसन्तकं रसालतरौ गोपिता तमालतरौ रे!![18]

इस प्रकार प्रथम से नवम रागों पर आश्रित कजरी गीतों का उदाहरण मिश्र द्वारा रचित कृति मृद्विका, मधुपर्णी मे भी देखने को मिलते हैं। अन्यान्य रागों पर भी आधारित कजरी के उदाहरण सम्भव हो सकते हैं। ये गीत लय एवं ताल पर आश्रित होते हैं तथा लोक परम्परा को ही प्रमाण मान कर गाये जाते हैं। यह सब कवि की प्रतिभा से संभव हो सकता है। जैसे– मिश्र के शिष्य प्रवर जनार्दनपाण्डेय मणि ने अपनी कृति 'निस्यन्दिनी' में गीत का लक्षण इस प्रकार किया है–गीतिर्नाम लयतालयोर्नैसर्गिकसंगतौ समुच्छ्वसितानां भावप्रवणचित्तस्य रससान्द्राणां तासां निश्छला–भिव्यक्तीनां शब्दार्थसंस्पन्दनमयी काचिद् रागात्मिका क्रीडा। नूनं ललितललितां छान्दसीं कांच्न सांगितिकीं वीणां वादयन्ती कवेरात्मोत्कलिकावधूटी विवृतावगुण्ठना भवन्ती यदापातमधुरं वाचोऽमृतं सृजति तदेव गीतिरिति।

अर्थात् गीति होती है लय और ताल की नैसर्गिक संगति में समुच्छ्वसित भावप्रवण चित्त की रस से सरोबार उन निश्छल अभिव्यक्तियों की शब्दार्थसंस्पन्दनमयी कोई रागात्मिका क्रीडा। निश्चित रूप से कवि की अपनी उत्कलिकावधूटी जब घूँघट खोल कर, अतिशय लालित्यभरी किसी छान्दसी सांगीतिकी वीणा को बजाती हुई आपात–मधुर वाणी के अमृत की सृष्टि करती है तो वही होती है गीति।मिश्र भी इनके मत का अनुमोदन करते हैं अर्थात् यह लक्षण मिश्र के गीतों में सिद्ध होते हुए देखा है।

(ख) रसिक गीत (रसिया)–

रासोत्सवं समालक्ष्य मुकुन्दराधिकाश्रितम्। रसिकं गीतये प्रीत्या व्रजेषु शरदागमे।।[19]

अर्थात् शरद्ऋतु की आगवानी में कृष्ण और राधा पर समाश्रित रासोत्सव को उपलक्षित कर व्रजमण्डल में रसिक गीत गाया जाता है। उदाहरण जैसे –'हरिदत्त शर्मा' का यह गीत –

श्रृणु रे मातः। श्रावणमासोऽप्यायातः नाद्य प्रेयानायातः स्फुरति गगनतले दामिनी।। दृश्यन्ते परितोऽम्भः श्यामा मेघाऽम्बरमालाः अविरलवर्षणगहनगर्जनैः कम्पन्ते नवबालाः धनतमसाछन्ने गगने, चलिते सुखशीतलपवने भवति कामेहा मे स्वामिनी ।।[20]

(ग) लांगलिक गीत (लाँगुरिया)–

लांगलेन धरां कर्षन् स्वेदसिक्तकलेवरः। हलवाहोऽपि यद्गीतं गायति प्रोन्मदो मुदा।। खेदं स्वकं लघूकर्तुं मन्य वृषभयोरपि। श्रृण्वताच्च मनोरंजि लांगलिकं तदुच्यते।।[21]

लांगल (हल) से जमीन, जोतता हुआ, पसीने से लथपथ शरीर वाला, मस्ती में डूबा हलवाला, प्रेमपूर्वक जो गीत गाता है अपनी थकान को मिटाने के लिए सुनने वालों के मन को आनन्दित करने के लिए जो गीत गाये जाते हैं उसे लांगलिक गीत कहते हैं। मिश्र का मानना है कि (हल खींचने वाले) बैलों की थकान को कम करने लिए भी उसे 'लांगलिक' कहते हैं –

विधाध्ययनं विना व्यतीतम्। यस्याभिमतं नो संगीतम्।।
यस्मिन् कला न कापि निलीना धिक्तादृक्षं जीवनम्। ब्रूते धिग्धिग्धिगिति मृदंगोधिक्तादृक्षं जीवनम्।।
ईष्याऽमर्षे गतिः प्रवृत्ता। स्वप्नेऽपि न वराटिका दत्ता।।
शक्तिः कोशसंचये युक्ता धिक्तादृक्षं जीवनम्। ब्रूते धिग्धिग्धिगिति मृदंगोधिक्तादृक्षं जीवनम्।।[22]

(2) संस्कार गीत

(क) सूतगृहगीत (सोहर)–

पुत्रजन्मविवाहादिमंगलावसरे पुनः। गीयते ननु नारीभिर्गीतं सूतगृहाभिधम्।।[23]

सूतगृह गीत पुत्र जन्म तथा विवाहादि मंगल अवसरों पर महिलाओं द्वारा गाया जाता है। यथा –

दुरितानि विधुतानि कुरुते शुभानि साधु विदधाति रे ।
गंगे !तव नीरगाहनं वितनुते विवुधलोकमनुयाति रे ।।[24]

(ख) बटुक गीत (बरुआ)–

यज्ञसूत्रोत्सवे रम्यं बटुभिक्षाशयात्मकम्। बटुकं बटुगीतं वा लोकगीतं महीयते।।[25]

बटुक गीत यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार के अवसर पर, बटु की शिक्षा के आशयों को प्रकाशित करने वाला रमणीय बटुक गीत गाया जाता है–

अवलोक्य वामनबटुकमदितिरथ कथयति रे। नाथ! तनयमिमं पठनाय गुरुभवनमुपनय रे।।[26]

(ग) प्रचरण गीत–

समागते विवाहेऽथ विविधाशयमांजि हि। लोकगीतानि गीयन्तेअंगन्नाभिः प्रायशो निशि।।
तत्रादौ प्रचरणं तद्गीयते मंगलात्मकम्।
सर्वदेवकुलग्रामदेवताऽऽमन्त्रणात्मकम्।।[27]

प्रचरण गीत विवाह का अवसर आने पर, नाना प्रकार के आशयों वाले लोकगीत महिलाओं द्वारा प्रायः रात में गाये जाते हैं तथा गीतों के प्रारम्भ में मंगलात्मक प्रचरण गाया जाता है जो कि समस्त देवताओं (गौरी,गणेश,आदि) कुलदेवता तथा ग्राम देवता को निमंत्रित करने वाला होता है। मंगलोत्सव कार्य का उछाह के साथ प्रचार किए जाने के कारण इसे पचरा कहते हैं–

कस्य पादपोऽयमस्ति कस्य वाऽथ दोरकं विभाति। मंजुलम् का नु दोलनाधिरूढ़ा साम्प्रतं विराजते?
निम्वपादपोऽयमस्ति, दोरकं दुकूलतन्तुभिर्विनिर्मितम्। अम्बा दोलनाधिरूढ़ा चण्डिका विराजते।।[28]

(घ) नक्तक गीत (नकटा)–

कन्यागृहं गतेष्वेव पुरुषेषु गृहस्त्रियः। नृत्यन्त्यो निशि गायन्ति लोकगीतं हि नक्तम्।।[29]

नक्तक (विवाह के अवसर पर) बारातियों के वधु के घर चले जाने पर घर की महिलायें, रात में नृत्य करती हुई (मनोविनोदार्थ) लोकगीत गाती है–

त्वदीयवदनं मया दिने–दिने पीतम्।। वदनमिदं मृगलांछनकल्पम्।
स्नेहसुधामुद्गिरति विजल्पम् त्वदीयवचनं मया दिने–दिने पीतम् ।।[30]

अतः नक्तक गीत रात्रिवेला में रागों, लयों द्वारा भावभंगिमाओं के साथ नृत्यसहित गाया जाता है।

(ड़) स्कन्धहारीय गीत (कँहरवा) –

अध्वश्रमापनोदीदं गीयमानं क्रमेण च। स्कन्धहारीयमाख्यातं वधूट्याश्चापि मोददम्।। वहन्तशिविकां गुर्वीमेवमेव हि वाहकाः। गायन्ति स्कन्धहारीयं समवेतस्वरोच्चयैः।।[31]

मार्ग की थकान को बहलाने वाला, क्रम से गाया जाने वाला यह गीत स्कन्धहारीय (कँहरवा) कहा जाता है जो (पालकी में बैठी) वधू का भी मनोरंजन करता है। लांगलिक गीत की भाँति ही भारी–भरकम पालकी को ढोने वाले वाहक (कहार) कोरस स्वर में स्कन्धहारीय गीत गाते हैं–

नभसि विभाति चमत्कृतचन्द्रो भाति चन्द्रमसि छाया।
सरसि विभाति सरागकमलिनी कमलिन्यामलिजाया।।

भाति भवने वधूटी षोडषी सदंगना
भाति गगने मुदी सतारका निरंजना।।
देहे भाति मनो दुर्ललितं प्रीतिमर्नसि विभाता
प्रीतौ निष्ठा भाति पुराणी सैव पिता सा माता
भाति विजने वसन्तकलकण्ठीवन्दना।।[32]

(3) महीनों पर आधारित गीत

(क) फाल्गुनिक गीत (फाग) –

गीयते फाल्गुने मासे फाल्गुनिकं गृहे–गृहे। चतुस्तालादिभिर्भेदैर्होलिकोत्सवसंगतम्।।[33]

चौताल आदि भेदों वाला फाग गीत होलिकोत्सव के उपलक्ष्य में तथा फागुन महीने में घर–घर में गाया जाता है।

होलीगीतमपि प्रोक्तं ततो हर्षौघसम्भृतम्। कुंमकुंमैः पटवासैश्च
वर्धितानन्दमंगलम्।।[34]

कुंमकुम और अबीर मलने से आनन्द एवं मंगल बढ़ाने वाले तथा हर्षसम्भार से ओत–प्रोत होने के कारण इसे होली गीत कहते हैं। असह्य शीत की कँपकपी से मुक्त हुआ समाज, ठंडक से मुक्ति देने वाले तथा बसन्त ऋतु से श्रीमण्डित फाल्गुन का अभिनन्दन करता है। अन्य राग पर आश्रित फाल्गुनिक गीत[35] मिश्र की 'श्रुतिम्भरा' में आनन्द विभोर कर देता है। चतुस्ताल[36] (चौताला) का उदाहरण मिश्र की 'मृद्वीका' भी आनन्दमग्न कर देती है।

(ख) चैत्रक गीत (चैता) –

चैत्रकं गीतये चैत्रे हर्षसम्मोदनिर्भरम्। नवाऽन्नागमसम्भारसम्पदिंगितवैभवम्।।
चैत्रकेऽपि क्वचिद् बाला कापि प्रोषितवल्लभा। व्यनक्ति स्वीयमातंक स्मरजं मार्मिकैःपदैः।।[37]

चैत्रक गीत चैत के महीने में, हर्ष एवं आह्लाद से ओत–प्रोत तथा नई फसल की समृद्धि से गार्हस्थ्य– वैभव की सूचना देने वाला तथा कभी–कभी परदेश गए प्रियतम वाली नवयौवना नायिका मर्मस्पर्शी शब्दों में अपने कामजनित आतंक को अभिव्यक्त करती हुई यह गीत गाती है–

विधुमभिसरति कुमुदिनी रे मातः। किमु करवाणि ?
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातःकिमु करवाणि?[38]

(4) उत्साह एवं उत्सव पर आधारित गीत

(क) उत्थापन गीत (उठान)–

रमण्यः प्रतिवेशिन्य उत्सवस्य समापने। उत्तिष्ठन्त्योऽपि गायन्ति किमप्यन्तिमगीतकम्।।
हास्याभिनयनाट्यादिसन्ततं मोदसम्भृतम्। गीतं तदुच्यते रम्यं मंगलोत्थानगीतकम्।।[39]

पड़ोसन महिलायें, उत्सव की समाप्ति के बाद उठते–उठते भी कोई अन्तिम (मंगल) गीत गाती हैं जो कि हँसी–ठहाके और अभिनय नाट्यादि से भरा

पुरा तथा आह्लाद से युक्त होता है। इस रमणीय गीत को मंगलमय उत्थापनगीत (उठान) कहा जाता है –

अभिरुचितं सततं कृतम्मया अभिरुचितम्।
अन्यैः पठिता भगवद्गीता रम्भाशुकचरितं श्रितम्मया अभिरुचितम्।।
अन्यैर्गृहै धृतो धनराशिः । ताम्बूलं वदने धृतम्मया अभिरुचितम्।।[40]

(ख) औष्ट्रहारिक गीत (ऊँटहारा)–

रात्रौ क्रमेलकरूढाः सार्थवाहा यथाक्रमम्। तन्द्रां निद्रामपाकर्तुं यच्च गायन्ति गीतकम्।।
तदौष्ट्रहारिकं गीतं लयवाहि समुच्यते। श्रृण्वतां पामराणां चह्रदयोन्मादकारकम्।।[41]

रात्रिवेला में ऊँटहारे व्यापारी (अपने) आलस्य एवं नींद को दूर करने के उद्देश्य से गीत गाते हैं वहीं लयवाही गीत औष्ट्रहारिककहा जाता है जो कि सुनने वाले गाँव–गिराँव के लागों के भी कलेजे में हूक सी उठा देता है। यथा –

नयने न करुणा हृदि न तव ममता रे। प्रियतम् ! किमसि कठोर।
दयिता विरहिणी सलिलहीनशफरीव विकलीभवति चित्तचोर।।[42]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रागकाव्य में प्रयुक्त राग समूह संगीतशास्त्र सम्मत होते हैं उसी प्रकार लोकगीतों के भी राग लोक सम्मत होते हैं। लोकगीतों को भी स्वेच्छापूर्वक किसी शास्त्रीयराग पर गाया जा सकता है और उसी प्रकार शास्त्रीय गीत को लोकगीतों पर भी गाया जा सकता है। मिश्र के अनुसार लोकगीतों के प्रमाण रूप में एकमात्र लोक को ही यथावत् स्वीकार करना चाहिए चाहे वह किसी भी रूप में विद्यमान है।

मिश्र संस्कृत गीतों को हिन्दी एवं समकालीन लोकभाषाओं के समानान्तर उन्हीं छन्दों, लोक धुनों एवं प्रतिष्ठित गीत प्रकारों से ढालते हुए उन्हेंसंस्कृत नाम दिया है। इन्होंने लोकभाषायी गीत चैता को 'चैत्रकम' कँरहवा को 'स्कन्धहारीयम्' सोहर को 'सूतगृहम्' तथा कजरी को 'कं प्रियाऽऽगमनसुखंरंजयति या सा कजरी' इस रूप से शुद्ध संस्कृत शब्द सिद्ध करते हुए इन्हें संस्कृत में उपनिबद्ध कर संस्कृत गीत होने का पवित्र गौरव प्रदान किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मिश्र गीत परम्परा के यशस्वी रचनाकार हैं, जिनका गीतोपवन लालित्य, वैविध्य एवं आनन्त्य के सुरभित तथा सुगन्धित पुष्पों से सर्वथा मण्डित है। मिश्र कहते हैं कि जीवन का वह कोई कार्य नहीं है, कोई अनुष्ठान नहीं है जो कि समस्त मंगलों को सिद्ध करने वाले गीतों से न प्रारम्भ होता हो।

संदर्भ–ग्रन्थ–सूची

1 अभिनवभारती (तृतीय खण्ड), पृ. 386
2 संगीत रत्नाकर, स्वराध्याय, पृ.15
3 नाट्यशास्त्रम्,32 पृ. 603

4 अभिराजयशोभूषणम्, 5/1, पृ. 248
5 वही, 5/2, पृ. 248
6 वही, 5/4, पृ. 248
7 वही, 5/5, पृ. 248
8 वही, 5/6, पृ. 248
9 वही, 5/13, पृ. 253
10 वही, 5/14, पृ. 253
11 नाट्यशास्त्रम्, 28/1–2
12 अभिराजयशोभूषणम् 5/15, पृ. 253
13 नव्यकाव्यतत्त्वविमर्शः, रहसविहारी द्विवेदी, दूर्वा–द्वितोयोन्मेष, 2005, पृ. 96
14 अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 3/1/6
15 अभिराजयशोभूषणम्, 5/17, पृ. 254
16 वही, 5/16, पृ. 253
17 वही,– 5/23 पृ. 258
18 वाग्वधूटी, पृ. 63
19 अभिराजयशोभूषणम्, 5/24,पृ. 264
20 वही, पंचम उन्मेष, पृ. 264
21 वही, 5/39–40, पृ 274
22 मृद्वीका, अभिराजराजेन्द्रमिश्र, पृ. 63
23 अभिराजयशोभूषणम्, 5/30,पृ. 267
24 वाग्वधूटि, अभिराजराजेन्द्रमिश्र,पृ. 73
25 अभिराजयशोभूषणम्, 5/31, पृ. 268
26 वही, पंचम उन्मेष, पृ. 269
27 वही, 5/32–33, पृ., 269
28 वही,पंच्म उन्मेष, पृ. 270
29 वही, 5/35, पृ. 271
30 मृद्वीका, पृ. 11
31 अभिराजयशोभूषणम्, 5/41, 42, पृ.275
32 वाग्वधूटी, पृ. 28
33 अभिराजयशोभूषणम्, 5/25 पृ. 264
34 वही, 5/26 पृ.264
35 मदयति हृदयं सुखयति सदयं श्रियमुद्गिरति वनाय वसन्तो भुवमवतरति सुखाय ।।–श्रुतिम्भरा, पृ. 84

36 करकमले लसति पिच्कारी विहरति मुरारिः। नहि रक्षति परिचयं न शीलम् पश्यति न वयो गिरिधारी विहरति मुरारिः।। नयनसमक्षं मिलति य एव रंजयति तमेव विहारी विहरति मुरारिः।।–मृद्विका, पृ. 27
37 अभिराजयशोभूषणम्, 5/28–29, पृ.267
38 वाग्वधूटि –पृ. 61
39 अभिराजयशोभूषणम्, 5/37–38, पृ. 272
40 मृद्वीका, पृ. 53
41 अभिराजयशोभूषणम्, 5/43–44, पृ. 276–277
42 वही, पृ. 277